दंसण मूलो धम्मो

# आत्मधर्म

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

वर्ष नववाँ
अंक छठवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

भाद्रपद
२४७९

## दिव्यध्वनि की अमोघ देशना

सर्वप्रथम श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी। उस दिव्यध्वनि में भगवान ने ऐसी घोषणा की कि—हे भव्य जीवों! यदि तुम्हें अपना कल्याण करना हो तो आत्मस्वभाव का आश्रय करो; मैंने स्वभावाश्रित पुरुषार्थ द्वारा परमात्मदशा प्रगट की है; तुम भी वैसा स्वभावाश्रित पुरुषार्थ करो तो तुम्हारी परमात्मदशा प्रगट हो। आत्मस्वभाव की यह बात जिसे जम जाये, उसे धन्य है! स्वभावसन्मुख होकर जिसके अंतर में यह बात जम जाये उसका अपूर्व कल्याण हो जाये!

भगवान की ऐसी अमोघ देशना झेलकर अनेक भव्य जीव स्वाश्रितभाव प्रगट करके मोक्षमार्ग में परिणमित हुए।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

१०२

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

## ❀ अरिहंत प्रभु प्रभुता बतलाते हैं ❀

श्री अरिहंत भगवान कहते हैं कि—अहो! पूर्ण चैतन्यघनस्वभाव पर दृष्टि करके उसमें अंतर्मुख एकाग्रता से हमने केवलज्ञान प्रगट किया है; और प्रत्येक जीव के अंतर में चैतन्यसागर छलाछल छलक रहा है; उसमें अन्तर्दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। चैतन्य आत्मा परिपूर्ण है; उसका भान किए बिना अन्य किसी रीति से सच्चा सम्यक्त्व नहीं होता। प्रत्येक आत्मा पूर्ण है; पूर्ण सामर्थ्यवान है; वर्तमान अवस्था में अपूर्णता भले हो, परन्तु वह अपूर्णता सदैव बनी रहे—ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। पर्याय से भी परिपूर्ण होने का प्रत्येक आत्मा का सामर्थ्य है। ऐसे आत्मस्वभाव को पहिचानकर उसके अनुभव से ही धर्म का प्रारम्भ होता है।

[प्रवचन से]

## अवश्य लाभ लीजिये!

भाद्रपद शुक्ला १५ तक जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों पर निम्नानुसार कमीशन दिया जायेगा—

१० से २५ रुपये के ग्रंथ लेने पर एक आना प्रति रुपया

२५ से ५० रुपये के ग्रंथ लेने पर दो आना प्रति रुपया

५१ से अधिक रुपये के ग्रंथ लेने पर चार आना प्रति रुपया

---

आत्मधर्म की सजिल्द १-२-३-५-६-७-८ वर्ष की फाइलों का कुल मूल्य २६.०० रुपया है, किन्तु वे सिर्फ १७.०० में दी जायेंगी। [डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता :—

जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

# आत्मधर्म

भाद्रपद : २४७९ ☆ वर्ष नववाँ ☆ अंक छठवाँ


# श्री जैनदर्शन-शिक्षणवर्ग की परीक्षा

## ( परीक्षा में पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर )

विद्यार्थियों के लिये ग्रीष्मावकाश के समय सोनगढ़ में प्रतिवर्ष शिक्षण-वर्ग खोला जाता है। यह शिक्षणवर्ग संवत् १९९७ से प्रारम्भ हुआ है। अनेक ग्रामों और शहरों के विद्यार्थी रुचिपूर्वक इस शिक्षणवर्ग का लाभ लेते हैं, इतना ही नहीं परन्तु साथ ही साथ बड़ी उम्र के अनेक जिज्ञासु भी वर्ग का लाभ लेते हैं। और कोई-कोई शिक्षण-संस्थाएँ सोनगढ़ की शिक्षण-पद्धति के अभ्यास के लिये अपने शिक्षकों को सोनगढ़ भेजती हैं। इस वर्ष शिक्षणवर्ग में बालवर्ग के उपरांत पहला, दूसरा और तीसरा—इसप्रकार तीन वर्ग रखे गये थे; उन तीनों वर्गों की परीक्षा में पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं।

### प्रथम वर्ग के प्रश्न और उनके उत्तर

[विषय : छहढाला की दूसरी ढाल,
जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका, प्रश्न १ से ४६]

**प्रश्न १—** सात तत्त्वों के नाम लिखो, और स्पष्टता से बतलाओ कि मिथ्यादृष्टि जीव उन सात तत्त्वों की कैसी-कैसी भूल करता है।

**उत्तर १—** जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—यह सात तत्त्व हैं। मिथ्यादृष्टि उन सात तत्त्वों में निम्नानुसार भूल करता है:—

**( १ ) जीवतत्त्व की भूल:** जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसे अज्ञानी जानता नहीं है और जो शरीर है, सो मैं ही हूँ, शरीर के कार्य मैं करता हूँ—ऐसा मानता है; तथा शरीर स्वस्थ हो तो

मुझे लाभ होता है; बाह्य अनुकूलता से मैं सुखी और बाह्य प्रतिकूलता से दु:खी, मैं निर्धन, मैं राजा, मैं बलवान, मैं निर्बल, मेरी स्त्री, मेरे बच्चे, मेरा धन, मैं कुरूप, मैं सुन्दर—ऐसा मानता है, वही जीवतत्त्व की भूल है।

**( २ ) अजीवतत्त्व की भूल :** मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यादर्शन के प्रभाव से ऐसा मानता है कि शरीर के उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुआ और शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा। धन, शरीर, भोजन (आहार) इत्यादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने पर अपने में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन मानना, शरीर की उष्ण अवस्था होने पर मुझे बुखार आया, शरीर की क्षुधा-तृषारूप अवस्था होने पर मुझे क्षुधा-तृषादि लग रही है, ऐसा मानना; शरीर कट जाने पर मैं कट गया; —इत्यादिरूप अजीव की अवस्था को अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानता है, यह अजीवतत्त्व की भूल है, क्योंकि अजीव को जीव मान लिया। शरीर तो अजीव है, उसके उत्पन्न होने या विनाश होने से जीव की उत्पत्ति या नाश नहीं होता।

**( ३ ) आस्रवतत्त्व की भूल :** मिथ्यात्व, राग, द्वेष, क्रोधादिभाव आस्रव हैं। वे भाव आत्मा को प्रगटरूप से दु:ख देनेवाले हैं; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा न मानकर उन्हें हितरूप जानकर निरन्तर उनका सेवन करता रहता है। वह आस्रवतत्त्व की भूल है।

**( ४ ) बंधतत्त्व की भूल :** जैसी सोने की बेड़ी वैसी ही लोहे की बेड़ी—दोनों बंधनकर्ता हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों जीव को बंधनकर्ता हैं; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा न मानकर पुण्य को अच्छा और हितकारी मानते हैं। तत्त्वदृष्टि से तो पुण्य और पाप दोनों बंधनकर्ता हैं, परन्तु अज्ञानी वैसा नहीं मानते—वह बंधतत्त्व की भूल है।

**( ५ ) संवरतत्त्व की भूल :** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र वे जीव को हितकारी और सुखदायक हैं; किन्तु मिथ्यात्व के कारण मिथ्यादृष्टि जीव उन सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और दु:खरूप मानता है—वह संवरतत्त्व की भूल है।

**( ६ ) निर्जरातत्त्व की भूल :** आत्मा में एकाग्र होकर शुभ और अशुभ—दोनों प्रकार की इच्छा रोकने से तप होता है और उस तप से निर्जरा होती है; ऐसा तप सुखदायक है, परन्तु अज्ञानी उसे क्लेशदायक मानता है, आत्मा की ज्ञानादि अनंतशक्तियों को भूलकर पाँच इन्दियों के विषयों में सुख मानकर उन्हीं में प्रीति करता है, वह निर्जरातत्त्व की भूल है।

**( ७ ) मोक्षतत्त्व की भूल :** आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा को मोक्ष कहते हैं। उस मोक्ष में

आकुलता का अभाव है, उसमें परिपूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है; परन्तु अज्ञानी को वह मोक्ष का सुख भासित नहीं होता; वह तो शरीर में और मौज-शौक में ही सुख मानता है। मोक्ष में शरीर, खाना-पीना और पैसा, कुटुम्बादि कुछ भी बाह्य में नहीं होता; इसलिये मोक्ष का वह अतीन्द्रिय सुख अज्ञानी को भासित नहीं होता।—यह मोक्षतत्त्व की भूल है।

—इसप्रकार सात तत्त्वों की भूल से अज्ञानी जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है।

**प्रश्न २**—निम्नोक्त पदार्थों की व्याख्या लिखो:—

(१) अगृहीत मिथ्यादर्शन। (२) कुधर्म। (३) गृहीत मिथ्याज्ञान। (४) अनेकान्त। (५) कुगुरु। (६) गृहीत मिथ्याचारित्र। (७) सम्यक्दर्शन।

**उत्तर २— (१) अगृहीत मिथ्यादर्शन:—** दूसरे के उपदेश बिना अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि जीव सात तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा करता आ रहा है, वह अगृहीत मिथ्यादर्शन है।

**(२) कुधर्म :—** मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूपी भावहिंसा, तथा त्रस-स्थावर जीवों के घातरूपी द्रव्यहिंसा;—इन दोनों प्रकार की हिंसाओं से जो धर्म माना गया हो, उसे कुधर्म कहते हैं।

**(३) गृहीत मिथ्याज्ञान:—**वस्तु अनेकधर्मात्मक अर्थात् अनेकान्तस्वरूप है, तथापि जिन शास्त्रों में एकान्तवाद का निरूपण किया हो और जो शास्त्र मिथ्यात्व—राग-द्वेष तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों का पोषण करते हों, ऐसे कुशास्त्रों को अर्थात् कुगुरु के बनाए हुए मिथ्याशास्त्रों को हितरूप जानकर उनका अभ्यास करना, वह गृहीत मिथ्याज्ञान है।

**(४) अनेकान्त:—**वस्तु में नित्यता और अनित्यतादि अनेक धर्म एकसाथ विद्यमान हैं अर्थात् वस्तु अनेक धर्मस्वरूप है; ऐसे वस्तुस्वरूप को पहिचानना वह अनेकान्त है।

**(५) कुगुरु:—**जिसके अंतर में तो मिथ्यात्व-राग-द्वेषादि हों और बाह्य में धन, वस्त्र, स्त्री इत्यादि परिग्रह हो, तथा पंचाग्नि आदि तप करते हों—वे कुगुरु हैं।—ऐसे मिथ्यादृष्टि कुगुरुओं की भक्ति, विनय अथवा पूजादि करने से गृहीत-मिथ्यात्व होता है। कुगुरु पत्थर की नौका समान हैं। जिसप्रकार पत्थर की नाव स्वयं भी डूबती है और उसमें बैठनेवाले भी डूब जाते हैं, उसी प्रकार कुगुरु स्वयं भी संसार-सागर में डूबते हैं और उन्हें माननेवाले भी डूब जाते हैं।

**(६) गृहीत मिथ्याचारित्र:—**जिन्हें आत्मा और पर वस्तु का भेदज्ञान नहीं है और जगत में प्रसिद्धि, लाभ, मान, पूजादि के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाकर के शरीर को क्षीण बना देते हैं—उसे गृहीत मिथ्याचारित्र कहते हैं। जैसे कि—पंचाग्नि तप तपें, धधकते हुए लोहे की चद्दर या किले पर सोएँ, जमीन में दबे रहें।

**( ७ ) सम्यग्दर्शन: —** जीवादि सात तत्त्वों को पहिचानकर उनकी यथार्थ प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है; सम्यग्दर्शन के बिना कभी धर्म नहीं होता।

**प्रश्न ३ :** निम्नोक्त शब्दों के शब्दार्थ लिखो:—(१) वीतरागविज्ञान, (२) कुबोध, (३) श्रुत, (४) भेदज्ञान, (५) कुलिंग, (६) भावहिंसा, (७) उपयोग, (८) उपलनाव।

**उत्तर ३ : ( १ ) वीतरागविज्ञान :** राग-द्वेष रहित केवलज्ञान।

**( २ ) कुबोध :** झूठा ज्ञान; मिथ्याज्ञान।

**( ३ ) श्रुत :** शास्त्र।

**( ४ ) भेदज्ञान :** आत्मा और परवस्तु के पृथक्त्व का यथार्थ ज्ञान।

**( ५ ) कुलिंग :** झूठा वेश; झूठा चिह्न।

**( ६ ) भावहिंसा :** जिनसे आत्मा के गुणों का घात होता है—ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव।

**( ७ ) उपयोग :** ज्ञान-दर्शन का व्यापार अथवा देखना-जानना।

**( ८ ) उपलनाव :** पत्थर की नौका।

**प्रश्न ४ :** निम्नोक्त पदार्थों की व्याख्या लिखो :— (१) गुण, (२) धर्मद्रव्य, (३) अगुरुलघुत्वगुण, (४) आहारवर्गणा, (५) ध्रौव्य, (६) प्रमेयत्वगुण, (७) आहारक शरीर।

**उत्तर ४ : ( १ ) गुण :** द्रव्य के सर्व भाग में और उसकी सर्व अवस्थाओं में जो रहे, उसे गुण कहते हैं।

**( २ ) धर्मद्रव्य :** स्वयं गतिरूप परिणमित होनेवाले जीव और पुद्गलों को गमन करते समय जो उदासीन निमित्त है, उसे धर्मद्रव्य कहते हैं।

**( ३ ) अगुरुलघुत्व गुण :** यह सर्व द्रव्यों में रहनेवाला सामान्य गुण है। इस अगुरुलघुत्व गुण के कारण द्रव्य की द्रव्यता स्थायी रहती है; अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो जाता, और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं हो जाता, और एक द्रव्य के अनंत गुण बिखरकर पृथक्-पृथक् नहीं हो जाते।

**( ४ ) आहारवर्गणा :** जो पुद्गल-स्कंध औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीररूप से परिणमन करता हो, उसे आहारवर्गणा कहते हैं।

**( ५ ) ध्रौव्य :** वस्तु के स्थायी एकरूप स्थित रहनेवाले अंश को ध्रौव्य कहते हैं, अथवा प्रत्यभिज्ञान के कारणभूत वस्तु के नित्यस्वभाव को ध्रौव्य कहते हैं।

**( ६ ) प्रमेयत्वगुण :** यह सर्व द्रव्यों में रहनेवाला सामान्य गुण है। इस प्रमेयत्वगुण के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय होता है।

**( ७ ) आहारकशरीर :** छठवें गुणस्थानवर्ती किसी मुनि को तत्त्व में शंका उत्पन्न होने पर केवली अथवा श्रुतकेवली के निकट जाने के लिये मस्तक में से जो एक हाथ का पुतला निकलता है, उसे आहारकशरीर कहते हैं।

**प्रश्न ५ :** निम्नोक्त प्रश्नों के उत्तर लिखो:—

(१) जीव शरीररूप क्यों नहीं होता ?

(२) पाँच शरीरों के नाम लिखो।

(३) एक द्रव्य में एकसाथ कितनी अर्थ-पर्यायें होती हैं ?

(४) त्रिकाल स्वभावव्यंजन पर्याय किन-किन द्रव्यों के होती हैं ?

(५) किस जीव के अधिक से अधिक शरीर होते हैं और वे कौन-कौन से ?

(६) द्रव्यों में आकार किस कारण होते हैं ?

**उत्तर ५ :** (१) प्रत्येक द्रव्य में अगुरुलघुत्व नामक गुण होने से एक द्रव्य बदलकर दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो जाता; इसलिये जीव शरीररूप नहीं होता।

(२) औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण—यह पाँच शरीर हैं।

(३) एक द्रव्य में उसके अनंत गुणों की अर्थपर्यायें एकसाथ होती हैं। और द्रव्य अपेक्षा से एक समय में एक ही अर्थ पर्याय होती है।

(४) धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन चार द्रव्यों के त्रिकाल स्वभावव्यंजनपर्याय होती है।

(५) छठवें गुणस्थानवर्ती किन्हीं मुनि के चार शरीर होते हैं, वे इसप्रकार हैं : औदारिक, तैजस, कार्मण और आहारक।

(६) प्रदेशत्व नाम का सामान्य गुण प्रत्येक द्रव्य में है, उस प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक द्रव्य में कोई न कोई आकार अवश्य होता है।

**प्रश्न ६ :** निम्नोक्त पदार्थ द्रव्य हैं, गुण हैं या पर्याय हैं वह बतलाओ—

(१) सम्यग्दर्शन, (२) प्रकाश, (३) द्वेष, (४) वस्तुत्व, (५) परमाणु, (६) संगीत, (७) चेतना, (८) चलना। —उपरोक्त पदार्थों में जो द्रव्य हो उसका विशेष गुण लिखो।

—जो गुण हो वह किस द्रव्य का कैसा (सामान्य या विशेष) गुण है वह लिखो।

—और जो पर्याय हो वह किस द्रव्य की कैसी पर्याय (अर्थ-पर्याय या व्यंजन-पर्याय) है वह लिखो।

**उत्तर : (१) सम्यग्दर्शन**—वह जीव द्रव्य के श्रद्धागुण की अर्थपर्याय है।

**(२) प्रकाश**—वह पुद्गल द्रव्य के रूपगुण की अर्थपर्याय है।

**(३) द्वेष**—वह जीवद्रव्य के चारित्रगुण की अर्थपर्याय है।

**(४) वस्तुत्व**—वह छहों द्रव्यों का सामान्य गुण है।

**(५) परमाणु**—वह द्रव्य है और वर्ण, गंध, रस और स्पर्श उसके विशेष गुण हैं।

**(६) संगीत**—वह पुद्गलद्रव्य के स्कंधरूप अर्थपर्याय है।

**(७) चेतना**—वह जीवद्रव्य का विशेष गुण है।

**(८) चलना**—वह पुद्गलद्रव्य की क्रियावतीशक्ति की अर्थपर्याय है।

●●●

# शांति का उपाय

हे जीवो! तुम्हें शांति की आवश्यकता हो तो वस्तुस्वभाव की स्वतंत्रता निर्णय करो, क्योंकि स्वाधीनता के बिना शांति नहीं होती। आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता का निर्णय करके अपने आत्मा में ही शांति ढूँढ़ो। आत्मा की शांति अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से बाहर नहीं होती, और न उसका उपाय भी आत्मा से बाहर होता है।

# श्री जैनदर्शन-शिक्षणवर्ग की परीक्षा

## ( परीक्षा में पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर )

**प्रश्न १—** जीव के नव अधिकारों के नाम लिखकर उनमें से भोक्तृत्व और अमूर्तत्व अधिकार में जिस-जिस नय से कथन किया गया हो वह लिखो। और बतलाओ कि वह प्रत्येक नय क्या प्रगट करता है।

**उत्तर १—** (१) जीवत्व, (२) उपयोगमयत्व, (३) अमूर्तत्व, (४) कर्तृत्व, (५) स्व-देहपरिमाणत्व, (६) भोक्तृत्व, (७) संसारित्व, (८) सिद्धत्व और (९) स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन।

—इसप्रकार जीव के नव अधिकार हैं। उनमें से भोक्तृत्व अधिकार में कहा है कि—

(१) निश्चयनय से जीव अपने शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञानस्वरूप भावों को भोगता है।

(२) अशुद्ध निश्चयनय से जीव अपने हर्ष-शोकादि विकारी भावों को भोगता है। और

(३) व्यवहारनय से जीव ज्ञानावरणादि कर्मों के फल को तथा पर के संयोग-वियोग को भोगता है। वास्तव में तो आत्मा पर के संयोग-वियोगादि का भोक्ता नहीं है, तथापि पर का भोक्ता कहना, वह व्यवहारनय है।

अमूर्तत्व अधिकार में ऐसा कहा है कि:—

(१) निश्चयनय से जीव में वर्णादि २० गुण न होने से वह अमूर्तिक है; और

(२) व्यवहारनय से जीव को कर्मबंधन होने से मूर्तिक कहा है। वास्तव में तो वर्णादि २० गुण पुद्गलद्रव्य के होने से पुद्गलद्रव्य ही मूर्तिक है—जीव मूर्तिक नहीं है।

—इसमें निश्चयनय का कथन तो वस्तु के असली स्वरूप को बतलाता है; अशुद्ध निश्चयनय का कथन पर्याय की अशुद्धता बतलाता है और व्यवहारनय का कथन अन्य पदार्थों के संयोग की अपेक्षा से कथन करता है।

यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि निश्चयनय से जीव अमूर्त अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप का संवेदन करने के स्वभाववाला है; परन्तु उसे भूलकर मूर्त—ऐसे पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से मूर्त कर्म का बंध हुआ, उसके निमित्त से शरीरादि मूर्त पदार्थों के साथ सम्बन्ध हुआ,

इसलिये जीव को व्यवहार से मूर्त कहा है, परन्तु निश्चय से तो मूर्त ऐसे पुद्गल द्रव्य तथा उसके वर्णादि गुणों से भिन्न होने के कारण जीव अमूर्त ही है।—ऐसा अमूर्तिकपना समझकर, विषय-कषायों से निवृत्त होकर शुद्धता प्राप्त करने का इस गाथा में उपदेश है।

इसीप्रकार भोक्तृत्व अधिकार में भी—संयोग का भोक्ता व्यवहार से कहा जाता है परन्तु पर को भोग ही नहीं सकता और हर्ष, शोक, दुःखादि विकार का भोक्ता होने का सच्चा स्वभाव नहीं है, किन्तु अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव का भोक्ता होने का ही उसका सच्चा स्वभाव है।—ऐसा जानकर उन शुद्ध ज्ञानादि भावों का भोक्तापना प्रगट करने का उपदेश हैं।

**प्रश्न २—** और उसका उत्तर— (प्रश्न : क) उपयोग की व्याख्या लिखो।

(उत्तर : क) चैतन्य का अनुसरण करके होनेवाले आत्मा के परिणामों को उपयोग कहते हैं; अथवा आत्मा के ज्ञान-दर्शन का व्यापार वह उपयोग है।

(प्रश्न : ख) कोई जीव परोपकारी कार्य करने में शरीर का उपयोग कर सकता है या नहीं ? वह कारणसहित समझाओ।

(उत्तर : ख) कोई जीव किसी भी कार्य में शरीर का उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि शरीर, आत्मा से भिन्न वस्तु है; आत्मा और शरीर का एक-दूसरे में अत्यंत अभाव होने से वे एक-दूसरे का कुछ नहीं कर सकते। और अगुरु-लघुत्व नामक गुण होने से एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमित नहीं होता। वास्तव में कोई जीव पर का उपकार नहीं कर सकता, मात्र वैसे भाव करता है।

(प्रश्न : ग) सम्यग्दर्शन और चक्षुदर्शन में क्या अन्तर है ? उन दोनों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की तुलना करो।

(उत्तर : ग) सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की पर्याय है, जबकि चक्षुदर्शन तो दर्शनगुण की पर्याय है; चक्षुदर्शन तो अज्ञानी को भी होता है, और सम्यग्दर्शन तो ज्ञानी को ही होता है। सम्यग्दर्शन के साथ मोक्षमार्ग का सम्बन्ध है, किन्तु चक्षुदर्शन के साथ मोक्षमार्ग का सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दर्शन और चक्षुदर्शन-दोनों के द्रव्य-गुण-काल-भाव निम्नानुसार हैं:—

(१) उन दोनों में द्रव्य तो जीव है, इसलिये दोनों का द्रव्य समान है।

(२) उन दोनों का क्षेत्र भी जीव अनुसार एक-सा है।

(३) कभी-कभी चक्षुदर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों एकसाथ भी होते हैं और कभी-कभी

एक साथ नहीं भी होते; इस अपेक्षा से उनमें कभी-कभी कालभेद नहीं भी होता और कभी-कभी कालभेद होता है। पर्यायअपेक्षा से तो दोनों का काल एकसमय का ही है।

(४) सम्यग्दर्शन तो निर्विकल्प प्रतीतिरूप है, और चक्षुदर्शन तो सामान्य अवलोकनरूप उपयोग है; इसप्रकार दोनों में भावभेद है।

(प्रश्न : घ) एक विद्यार्थी ने दूसरे के पास से मानस्तंभ के समय जो निमंत्रण-पत्रिका निकली थी, उसका वर्णन सुना और फिर उसने वह पत्रिका अपने हाथ में लेकर मानस्तंभ का चित्र देखा; उस से वह मानस्तंभ का विशेष विचार करने लगा।—इसप्रकार श्रवण, चित्र का देखना और विशेष विचार में क्या-क्या उपयोग हुए वह अनुक्रम से लिखो।

(उत्तर : घ) पत्रिका का विवरण सुना वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान हुआ, उससे पहले अचक्षुदर्शन का उपयोग हुआ।

बाद में मानस्तंभ का चित्र देखा, वह मतिज्ञान हुआ, उससे पूर्व चक्षुदर्शन का उपयोग हुआ।

चित्र देखने के पश्चात् मानस्तंभ का विशेष विचार हुआ, वह श्रुतज्ञान हुआ।

—इसप्रकार पहले अचक्षुदर्शन, फिर मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, फिर चक्षुदर्शन, फिर मतिज्ञान और फिर श्रुतज्ञान—इसप्रकार उपयोग हुए।

**प्रश्न ३ — और उसका उत्तर —**

निम्नोक्त प्रश्नों के उत्तर कारणसहित लिखो :

(१) चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन दोनों एक ही समय होते हैं ?

(उत्तर :) नहीं होते, क्योंकि वे दोनों एक ही गुण की भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं। एक गुण की दो पर्यायें एक साथ नहीं होतीं।

(२) सम्यग्दर्शन और सम्यगज्ञान दोनों एकसाथ होते हैं ?

(उत्तर :) हाँ, क्योंकि सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है, इसलिये वे दोनों एकसाथ ही होते हैं।

(३) एक द्रव्य में दो व्यंजनपर्यायें एकसाथ होती हैं ?

(उत्तर :) नहीं होतीं, क्योंकि एक द्रव्य के एक गुण की दो पर्यायें एकसाथ नहीं होती।

(४) अस्तित्व गुण और स्थितिहेतुत्व दोनों गुण एकसाथ किस द्रव्य में होते हैं ?

(उत्तर :) अधर्मास्तिकाय द्रव्य में वे दोनों गुण एकसाथ होते हैं।

(५) गति (गमन) और गतिहेतुत्व दोनों एक ही द्रव्य में होते हैं ?

(उत्तर :) नहीं होते; गति तो जीव और पुद्गलों को ही होती है, परन्तु उनमें गतिहेतुत्व नहीं है; गतिहेतुत्व धर्मास्तिकाय द्रव्य का विशेष गुण है, परन्तु वह स्वयं गति नहीं करता। गति तो क्रियावतीशक्ति की पर्याय है, और क्रियावतीशक्ति तो जीव और पुद्गल में ही है तथा गतिहेतुत्व गुण धर्मास्तिकाय में ही है। इसलिये गति और गतिहेतुत्व दोनों एक ही द्रव्य में नहीं होते।

(६) मनुष्य चलता है, तब उसकी परछाईं उसके साथ चलती है ?

(उत्तर :) नहीं; वास्तव में परछाईं नहीं चलती, किन्तु उस-उस स्थान पर रहनेवाले रजकण ही धूप में से छायारूप में बदलते रहते हैं। एक स्थान की छाया दूसरे स्थान पर नहीं जाती।

(७) मानस्तंभ के दर्शन चक्षुओं से किए वह चक्षुदर्शन है ?

(उत्तर :) नहीं; क्योंकि ''यह मानस्तंभ है''—ऐसा भेद दर्शन उपयोग में नहीं होता। ''यह मानस्तंभ है''—ऐसा जाना वह तो ज्ञान-उपयोग हो गया।

**प्रश्न ४ :** निम्नोक्त पदार्थों के बीच कौन-सा अभाव है वह कारणसहित समझाओ।

(१) सिद्धत्व का संसारदशा में।

(२) घड़ी की सुइयाँ और कालाणु के बीच।

(३) मतिज्ञान का श्रुतज्ञान में।

(४) जीव का विकार और कर्म के बीच।

(५) जड़ इन्द्रियों और जड़ मन के बीच।

**उत्तर ४ :** (१) सिद्धत्व का संसारदशा में अभाव वह 'प्राक् अभाव' (प्राग्भाव) है। क्योंकि एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उसकी पूर्व पर्याय का जो अभाव है, उसे प्राग्भाव कहते हैं।

(२) घड़ी की सुइयाँ और कालाणु के बीच अत्यंत अभाव है; क्योंकि वे दोनों पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं; एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव वह अत्यन्तअभाव है।

(३) मतिज्ञान का (बाद के) श्रुतज्ञान में अभाव, वह प्रध्वंस-अभाव है; क्योंकि एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उसकी आगामी पर्याय में जो अभाव, वह प्रध्वंस-अभाव है।

(४) जीव का विकार और जड़कर्म के बीच अत्यंत अभाव है; क्योंकि दोनों भिन्न-भिन्न द्रव्यों की पर्यायें हैं।

(५) जड़ इन्द्रियों और द्रव्य-मन के बीच अन्योन्य अभाव है; क्योंकि वे दोनों पुद्गलद्रव्य

की ही पर्यायें हैं;—एक पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय का दूसरे पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय में अभाव, वह अन्योन्यअभाव है।

**प्रश्न ५:** निम्नोक्त पदार्थ द्रव्य है, गुण-पर्याय हैं वह बतलाओ।

(१) चरपराहट, (२) अचक्षुदर्शन, (३) सप्ताह, (४) समुद्घात, (५) चेतना, (६) अवगाहनहेतुत्व, (७) मृगजल, (८) सूक्ष्मत्व।

—उपरोक्त पदार्थों में जो द्रव्य हो उसका विशेष गुण लिखो; जो गुण हो वह किस द्रव्य का कैसा गुण है वह लिखो; और जो पर्याय हो वह किस द्रव्य के किस गुण की कसी (विकारी या अविकारी तथा अर्थ या व्यंजन) पर्याय है वह लिखो।

**उत्तर ५ :** (१) चरपराहट पुद्गल द्रव्य के रसगुण की विभावअर्थपर्याय है।

(२) अचक्षुदर्शन जीवद्रव्य के दर्शनगुण की विभावअर्थपर्याय है।

(३) सप्ताह काल द्रव्य की व्यवहारपर्याय है।

(४) समुद्घात—जीव द्रव्य के प्रदेशों में संकोच-विकास होने के कारण समुद्घात होता है और वह जीव के प्रदेशत्व गुण की विभाव-व्यंजनपर्याय है।

(५) चेतना जीवद्रव्य का विशेष गुण है और अनुजीवी है।

(६) अवगाहनहेतुत्व आकाश द्रव्य का विशेष गुण है और अनुजीवी है।

(७) मृगजल पुद्गल द्रव्य के वर्णगुण की विभावअर्थपर्याय है।

(८) सूक्ष्मत्व जीव द्रव्य का विशेष गुण है और प्रतिजीवी है।

**प्रश्न ६ ( अ ) :** निम्नोक्त पदार्थों की व्याख्या लिखो।

(१) वर्गणा, (२) निश्चयनय, (३) अवांतर सत्ता, (४) आहारवर्गणा, (५) लोकाकाश, और (६) चक्षुदर्शन।

**उत्तर : ( अ ) ( १ ) वर्गणा :** वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

**( २ ) निश्चयनय :** श्रुतज्ञान का जो पक्ष पदार्थ के असली स्वरूप को बतलाये, उसे निश्चयनय कहते हैं।

**( ३ ) अवांतरसत्ता :** महासत्ता में से किसी भी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवांतर सत्ता कहते हैं।

**( ४ ) आहारवर्गणा :** जो पुद्गलस्कंध औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीररूप परिणमित हो, उसे आहारवर्गणा कहते हैं।

**( ५ ) लोकाकाश :** आकाश के जितने भाग में छहों द्रव्य रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं।

**( ६ ) चक्षुदर्शन :** चक्षुसम्बन्धी मतिज्ञान होने से पूर्व सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन का जो व्यापार होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

**प्रश्न ६ ( ब ) :** निम्नोक्त दोनों में उत्पाद-व्यय-ध्रुव समझाओ।

(१) बुखार उतर गया।

(२) एक जीव ने क्रोध मिटाकर क्षमा की।

**उत्तर ( ब ) :** (१) 'बुखार उतर गया' वहाँ प्रथम पुद्गल द्रव्य के स्पर्शगुण की जो उष्ण पर्याय थी, उसका व्यय हुआ, ठण्डी पर्याय का उत्पाद हुआ और परमाणु तथा स्पर्शगुण नित्य ध्रुवरूप से स्थित रहे।

(२) 'जीव ने क्रोध मिटाकर क्षमा की' वहाँ प्रथम उस जीव के चारित्रगुण की क्रोधपर्याय थी, उसका व्यय हुआ, क्षमापर्याय का उत्पाद हुआ और वह जीवद्रव्य तथा उसका चारित्रगुण नित्य ध्रुवरूप से स्थित रहे।

—इसप्रकार एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव हैं। ●●●

## परमेश्वर की घोषणा

सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी में वस्तुस्वरूप की ऐसी परिपूर्णता घोषित की है कि—प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से पूर्ण-परमेश्वर है; उसे किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं है; उसीप्रकार प्रत्येक जड़ परमाणु भी अपने स्वभाव से परिपूर्ण—जड़ेश्वर भगवान—है। इसप्रकार चेतन और जड़ प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र और अपने से ही परिपूर्ण हैं; कोई तत्त्व किसी दूसरे तत्त्व का आश्रय नहीं माँगता।—ऐसा समझकर अपने परिपूर्ण आत्मा की श्रद्धा और आश्रय करना तथा पर का आश्रय छोड़ना, वह परमेश्वर होने का मार्ग है। [— प्रवचन से]

# श्री जैनदर्शन-शिक्षणवर्ग की परीक्षा

## ( तीसरे वर्ग ( उत्तम श्रेणी ) में पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर )

**: विषय :**

**मोक्षमार्ग-प्रकाशक अध्याय १, पृष्ठ १ से ११**

**जैनसिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्न : १ से १३२ तथा २८९ से ३०५**

**उपादान-निमित्त के दोहे ( ४७+७ )**

**प्रश्न १ :** भावलिंगी मुनि किसे कहते हैं, उनके अंतरंग और बाह्य चिह्न क्या हैं और उनकी बाह्य प्रवृत्ति कैसी होती है उस सम्बन्ध में एक निबंध लिखो।

( इस प्रश्न के उत्तररूप निबंध अगले अंक में दिया जाएगा।)

**प्रश्न २ ( अ ) :** वीतराग-विज्ञानरूप प्रयोजन की सिद्धि श्री अरिहंतादिक द्वारा किस प्रकार होती है वह कारणसहित समझाओ।

**उत्तर २ ( अ ) :** वीतरागी विज्ञान द्वारा ही जीव को सुख की प्राप्ति और दु:ख का नाश होता है, इसलिये उस वीतरागी विज्ञान की प्राप्ति करना वह जीव का प्रयोजन है; उस वीतरागी विज्ञान की प्राप्ति अरिहंतादिक द्वारा निम्न कारणों से होती है:—

आत्मा के परिणाम तीन प्रकार के हैं :—अशुभ, शुभ और शुद्ध। तीव्र कषायरूप परिणाम अशुभ हैं, मंद कषायरूप परिणाम शुभ हैं और कषायरहित परिणाम शुद्ध हैं। उनमें से—

( १ ) अपने वीतरागी विज्ञानरूप स्वभाव के घातक ऐसे ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का अशुभ परिणामों द्वारा तो तीव्रबंध होता है।

( २ ) शुभ परिणामों द्वारा मंद बंध होता है और वे शुभ परिणाम प्रबल हों तो पूर्व के तीव्रबंध भी मंद हो जाते हैं; और

( ३ ) शुद्ध परिणामों द्वारा बंध होता ही नहीं, मात्र उसकी निर्जरा होती है।

— अरिहंतादिक के प्रति स्तवनादिरूप जो भाव होते हैं, वे कषाय की मंदतापूर्वक होते हैं, इसलिये वे विशुद्ध परिणाम हैं, तथा समस्त कषायभावों को मिटाने के साधन हैं; इसलिये वे शुद्ध

परिणामों के भी कारण हैं। ऐसे परिणामों द्वारा अपने घातक ऐसे घातिकर्मों की हीनता होकर स्वाभाविक रीति से ही वीतराग-विशेषज्ञान प्रगट होता है। अपने परिणामें से जितने अंश में घातिकर्म हीन हों, उतने ही अंश में वीतरागी-विज्ञान प्रगट होता है।—इसप्रकार श्री अरिहंतादि द्वारा अपना वीतराग-विज्ञानरूप प्रयोजन सिद्ध होता है। और श्री अरिहंतादिक के आकार का-उपशांत मुद्रा का तथा प्रतिमा इत्यादि का अवलोकन, उनके स्वरूप का विचार, उनके वचनों का श्रवण, निकटवर्ती होना तथा उनके अनुसार प्रवर्तन—इत्यादि कार्य तत्काल निमित्तभूत होकर रागादिक को हीन करते हैं और जीव-अजीवादि का विशेष ज्ञान उत्पन्न करते हैं, इसलिये इस प्रकार भी श्री अरिहंतादिक द्वारा वीतरागविज्ञानरूप प्रयोजन की सिद्धि होती है।

इस सम्बन्ध में श्री प्रवचनसार में कहा है कि—

**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**
**सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥**

**प्रश्न २ (ब) :** मंगल करने वाले को जिनशासन के भक्त देवादिक सहायता में निमित्त क्यों नहीं बनते, उसके कारण लिखो।

**उत्तर २ (ब) :** जीवों को सुख-दुःख होने का कारण अपने कर्मों का उदय है और तदनुसार बाह्य निमित्तों की प्राप्ति होती है। जिसके पुण्य का उदय हो, उसे बाह्य में सहायता के निमित्त प्राप्त होते हैं, और जिसके उस प्रकार के पुण्य का उदय नहीं होता, उसे वैसे सहायता के निमित्त प्राप्त नहीं होते।

और जो देहादिक हैं, वे क्षायोपशमिक ज्ञानवाले हैं; इसलिए एक साथ सब नहीं जान सकते। मंगल करनेवाले का ज्ञान भी किसी देवादिक को किसी काल में होता है; इसलिये यदि मंगल करनेवाले का ज्ञान ही न हो तो वे देवादिक उसे सहाय में निमित्त कैसे होंगे ?

और यदि उस मंगल करनेवाले का उन देवादिक को किसी समय ज्ञान हो जाए, तो उससमय भी यदि उस देव को अति मंद-कषाय हो तो उसे सहायता करने के परिणाम ही नहीं आते, और यदि तीव्र कषाय हो तो धर्मानुराग नहीं होता और यदि मध्यम कषायरूप उस कार्य को करने के परिणाम हों, तथापि अपनी शक्ति न हो तो क्या कर सकते हैं ?

—इन कारणों से मंगल करनेवाले को भी जिनशासन के भक्त देवादिक सहायता में निमित्त

नहीं होते। किसी समय उन देवादिक की शक्ति हो, धर्मानुरागरूप मंदकषाय के वैसे ही परिणाम हों, और उस समय अन्य मंगलकर्ता जीव के कर्तव्य को वह जान लें, तो कोई देवादिक किसी धर्मात्मा को सहायता करता है। परन्तु इसप्रकार मंगल करनेवाले को देवादिक सहायता करते ही हैं—ऐसा कोई नियम नहीं है। मंगल करने में जीव के अपने विशुद्ध परिणाम होते हैं तथा अपने वीतरागीविज्ञानरूप प्रयोजन की पुष्टि होती है, उसी का उसे लाभ है; बाह्य योग प्राप्त होना, वह तो पुण्य के उदयानुसार बनता है।

**प्रश्न : ३** समर्थकारण की व्याख्या लिखो और उस व्याख्या में आये हुए नियम निम्नोक्त दो प्रसंगों में किस प्रकार लागू होते हैं वह स्पष्ट समझाओ—

(१) एक जीव को वर्तमान में औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

(२) महाविदेहक्षेत्र में विराजमान एक मुनि का अनंतचतुष्टय प्रगट होते हैं।

**उत्तर ३ : समर्थकारण की व्याख्या :** प्रतिबंध के अभाव तथा सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थकारण कहते हैं; समर्थकारण कारण होने से कार्य नियम से होता है। सहकारी समस्त सामग्रियों में उपादानकारण भी आ जाता है। जहाँ उपादान का कार्य होता है, वहाँ सहकारी कारणों को समर्थकारण कहा जाता है; और जहाँ उपादान का कार्य नहीं होता वहाँ उन कारणों को असमर्थकारण कहा जाता है अर्थात् कारण होने में वे असमर्थ हैं, क्योंकि कार्य ही नहीं हुआ है।

(१) जो जीव वर्तमान में औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट करता है, उसे वर्तमान में दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम है; इसलिये उसके उदय का अभाव है; और असंज्ञीपने का अभाव, निद्रा का अभाव, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा का अभाव, अपर्याप्तपने का अभाव—इत्यादि प्रतिबंधों का अभाव है। मिथ्यात्व का उदय, असंज्ञीपना इत्यादि सम्यग्दर्शन के प्रतिबंधक हैं; सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाले को उन प्रतिबंधों का अभाव है; और अपने श्रद्धागुण की उसप्रकार की निर्मल पर्याय होने की पात्रता (उपादानकारण) तथा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, देशनालब्धि की प्राप्ति, दर्शनमोह का उपशम, जागृत अवस्था, संज्ञीपना, पर्याप्तपना इत्यादि (निमित्तकारण) का सद्भाव है। इसप्रकार उस जीव को प्रतिबंधों का अभाव है और सहकारी समस्त सामग्री के सद्भावरूप समर्थकारण है।

(२) महाविदेहक्षेत्र में विराजमान मुनि को अनंतचतुष्टय प्रगट हों, उसमें उन्हें निम्नानुसार समर्थकारण हैं:—

प्रथम तो ज्ञानावरणादि चार घातिकर्म, गृहस्थदशा, वस्त्रसहितपना, आहार—इत्यादि अनंत चतुष्टय के प्रतिबंधक हैं, उन प्रतिबंधों का उनके अभाव है; और सहकारी सामग्रीरूप से अपने ज्ञानादि गुणों की उस समय की वैसी पर्याय होने की पात्रता (उपादानकारण), तथा पुरुषदेह, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित दिगम्बर मुनिदशा, उत्तम संहनन, महाविदेहक्षेत्र इत्यादि (निमित्तकारण) हैं।

यहाँ ऐसा समझना कि उपादान में कार्य हुआ तो उस समय उस उपादान के साथ पुरुषदेह, उत्तम संहनन, महाविदेहक्षेत्र—इत्यादि को समर्थकारण कहा, और यदि उपादान में कार्य न हुआ हो तो उन्हीं को असमर्थकारण कहा जाता है। निमित्तों को भी समर्थकारण कहा, उससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि कार्य की उत्पत्ति होने में वे किंचित् भी कार्यकारी हैं। कार्य को उत्पन्न करने की सामर्थ्य तो अकेले उपादान में ही है।

**प्रश्न ४ : और उसका उत्तर :**

(प्रश्न)—निम्न मान्यतावाले किस अभाव का अस्वीकार करते हैं, वह कारणसहित लिखो:—

(१) वर्तमान में एक जीव के अज्ञान वर्त रहा है, क्योंकि उसे कुगुरु का उपदेश मिला है।

(उत्तर)— ऐसा माननेवाला जीव, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के अत्यंत अभाव को नहीं मानता है। एक जीव की पर्याय में दूसरे जीव का अत्यंत अभाव है, इसलिये दूसरे जीव के कारण अज्ञान नहीं हो सकता।

(२) जीव वर्तमान मिथ्यात्व को दूर करके सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं कर सकता।

(उत्तर)—ऐसा माननेवाला जीव, वर्तमान मिथ्यात्वपर्याय का भविष्य की पर्याय में प्रध्वंसअभाव है, उसे नहीं मानता। भविष्य की पर्याय में वर्तमान पर्याय का प्रध्वंस अभाव है; इसलिये मिथ्यात्व दूर होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है।

(३) पूर्वकाल में एक जीव ने बहुत विकार किया था, इसलिये वह वर्तमान में भी विकार करता है।

(उत्तर)—ऐसा माननेवाला जीव, वर्तमान पर्याय का पूर्वकालीन पर्याय में प्राग्-अभाव है, उसे नहीं मानता है; वर्तमान पर्याय का पूर्वकालीन पर्याय में प्राग्-अभाव है, इसलिये पूर्व के विकार के कारण वर्तमान में विकार हो—ऐसा नहीं है; पूर्व की पर्याय विकारी होने पर भी वर्तमान

में अपने नित्य स्वभाव के आलंबन से निर्मल पर्याय हो सकती है।

(४) अरिहंत भगवान को चार अघातिकर्म शेष हैं, इसलिए वे सिद्धदशा को प्राप्त नहीं कर सकते।

(उत्तर)—ऐसी मान्यतावाला जीव, एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यंत अभाव है, उसे नहीं मानता, अरिहंत भगवान और घातिकर्म—इन दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है, इसलिए वास्तव में अरिहंत भगवान घातिकर्म के कारण संसार में नहीं रहे हैं, परन्तु अपनी योग्यता से संसारस्थपनेरूप (-अशुद्ध उपादानरूप) कारण से सिद्धदशा को प्राप्त नहीं कर पाते।

(५)हवा का झोंका आने से वृक्ष के पत्ते हिले और उससे उसके नीचे परछाईं चली।

(उत्तर)—ऐसा माननेवाला जीव एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय का दूसरे पुद्गल की वर्तमान पर्याय में अन्योन्यभाव है, उसे नहीं मानता है; हवा, पत्तों का हिलना और परछाईं का चलना—यह तीनों भिन्न-भिन्न पुद्गलों की अवस्थाएँ हैं; इसलिये उनका एक-दूसरे में अन्योन्य अभाव है और इसलिये हवा के कारण पत्ते नहीं हिले हैं, तथा पत्तों के हिलने के कारण परछाईं नहीं चली है। (वास्तव में परछाईं नहीं चलती किन्तु किन्तु भिन्न-भिन्न स्थान के परमाणु छायारूप परिणमित होते हैं।)

**प्रश्न ५ और उसका उत्तर :**

(प्रश्न)—निम्नोक्त वाक्यों का कथन किस नय का है, वह लिखो और उसमें निश्चय-व्यवहार समझाओ:—

(१) कोई जीव प्रबल कर्म के उदय के कारण ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर मिथ्यात्वी हो जाता है।

(उत्तर)—यह कथन व्यवहारनय का है, क्योंकि उसमें निमित्त से कथन है। वास्तव में जीव कर्म के उदय के कारण ग्यारहवें गुणस्थान से नहीं गिरा है, परन्तु अपनी पर्याय में निर्बल पुरुषार्थ के कारण अपनी योग्यता से गिरा है—यह निश्चय का कथन है। एक द्रव्य के कारण दूसरे द्रव्य में कुछ भी होता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार कथन है।

(२) जीव स्वपुरुषार्थ द्वारा अनंतवीर्य प्रगट कर सकता है।

(उत्तर)—यह वाक्य निश्चयनय का है, अर्थात् यह यथार्थ है। और जीव ने अंतरायकर्म का अभाव किया—ऐसा कहना, अथवा अंतरायकर्म का अभाव होने से जीव को अनंत वीर्य प्रगट हुआ—ऐसा कहना वह व्यवहारकथन है, क्योंकि उसमें निमित्त अपेक्षा से कथन है। स्व-

द्रव्याश्रित कथन हो, वह निश्चय है और पर-द्रव्याश्रित कथन हो वह व्यवहार है।

(३) भगवान की दिव्यध्वनि जीवों को तत्त्वज्ञान का कारण है।

(उत्तर)—यह कथन व्यवहार का है; क्योंकि दिव्यध्वनि परद्रव्य है, परद्रव्य के कारण जीव को तत्त्वज्ञान होता है—ऐसा कहना उपचार होने से व्यवहारकथन है। वास्तव में जीवों को अपने ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से ही तत्त्वज्ञान होता है—यह निश्चय है।

(४)अनादिकाल से अज्ञानी जीव अपने अज्ञान तथा मोहभाव के कारण संसार में परिभ्रमण करता है।

(उत्तर)—यह कथन निश्चय का है, अर्थात् वास्तव में ऐसा ही है; क्योंकि जीव अपनी भूल से ही परिभ्रमण करता है। कर्मों ने जीव को संसार में भटकाया है-ऐसा कहना वह व्यवहारकथन है, क्योंकि कर्म तो परद्रव्य हैं-संयोगरूप हैं।

(५) श्री सीमंधर भगवान के दर्शन करने से मुझे शुभभाव हुआ।

(उत्तर)—यह कथन व्यवहार का है; क्योंकि पर के कारण शुभभाव हुआ-ऐसा कहना वह संयोग का कथन है; वास्तव में अपने चारित्र-गुण की वैसी योग्यता से ही शुभभाव हुआ है-वह निश्चय है, क्योंकि वह स्वाश्रित कथन है।

(६) धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण सिद्धभगवान अलोक में नहीं जा सकते।

(उत्तर)— यह कथन व्यवहार का है; क्योंकि परद्रव्याश्रित है। वास्तव में सिद्ध भगवान की योग्यता ही लोक के अग्रभाग में रहने की है; अलोक में जाने की योग्यता ही उनमें नहीं है—इसलिये वे अलोक में नहीं जाते—ऐसा कहना वह निश्चयनय है, क्योंकि वह स्वाश्रितभाव को सूचित करता है।

(७) श्रेणिक राजा नरकगतिनामकर्म के उदय के कारण नरक में गये।

(उत्तर)—यह कथन व्यवहारनय का है, क्योंकि यह परद्रव्याश्रित कथन है, वास्तव में कर्म परद्रव्य है, उसके कारण जीव नरक में नहीं जाता परन्तु श्रेणिक राजा अपने आत्मा की उसप्रकार की योग्यता से ही नरक में गये हैं, नरकगति भी आत्मा का ही औदयिक भाव है; यह कथन निश्चय का है।

स्वद्रव्याश्रित कथन निश्चय है और परद्रव्याश्रित कथन व्यवहार है। निश्चयकथन व्यर्थ वस्तुस्थिति बतलाता है और व्यवहकारकथन संयोग बतलाता है।

**प्रश्न ६** (अ) निम्नोक्त शब्दों की व्याख्या लिखो:—

(१) अवग्रह, (२) मंगल, (३) मोक्षमार्ग, (४) उपादानकारण, (५) संक्लेशपरिणाम, (६) प्रध्वंसाभाव, (७) चेतना।

**उत्तर** (अ) : **(१) अवग्रह :** यह मतिज्ञान का एक भेद है; इन्द्रिय और पदार्थ के योग्यस्थान में रहने से, सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन के पश्चात् अवान्तर सत्तासहित विशेष वस्तु के ज्ञान को अवग्रह कहते हैं।

**(२) मंगल :** 'मं' अर्थात् पाप, उसे जो 'गालयति' अर्थात् नष्ट करे, वह मंगल है। मिथ्यात्वादि पापभावों का जिस भाव से नाश हो, वह मंगल है। अथवा 'मंग' अर्थात् पवित्रता, उसे 'लाति' अर्थात् लाये—दे, वह मंगल है।—इसप्रकार आत्मा के जिस भाव से पाप दूर हो और पवित्रता प्रगट हो, वह मंगल है।

**(३) मोक्षमार्ग:** अर्थात् मुक्ति का मार्ग। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र—इन तीनों की एकता, वह मोक्षमार्ग है।

**(४) उपादानकारण :** (१) जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित हो, उसे उपादानकारण कहते हैं; जैसे कि—घड़ा होने में मिट्टी; केवलज्ञान होने में जीव।

(२) अनादिकाल से द्रव्य में पर्यायों का जो प्रवाह चल रहा है, उसमें अनंतर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय, वह उपादानकारण है और अनंतर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय, वह कार्य है।

(३) प्रत्येक समय की पर्याय की योग्यता, वह उपादानकारण और उस समय की पर्याय स्वयं ही कार्य है।

—इसप्रकार तीन प्रकार से उपादानकारण की व्याख्या होती है। उपादानकारण ही कार्य का सच्चा कारण है।

**(५) संक्लेश परिणाम :** तीव्र कषायरूप पापपरिणाम वह संक्लेश परिणाम हैं; जैसे कि—हिंसादि पापपरिणाम वे संक्लेश परिणाम हैं।

**(६) प्रध्वंसाभाव :** एक सम्यग्ज्ञानी जीव की वर्तमान संसारपर्याय का उसकी भावी सिद्ध पर्याय में अभाव वह प्रध्वंसाभाव है।

**(७) चेतना :** जिसमें पदार्थों का प्रतिभास अर्थात् जानना-देखना होता है, उसे चेतना कहते हैं; चेतना जीव का लक्षण है।

**प्रश्न ६ ( ब ) :** निम्न दोहों का भावार्थ समझाओ—

(१) **''उपादान बल जहँ तहां, नहि निमित्त को दाव,**
**एक चक्र सों रथ चले, रवि को यहै स्वभाव॥''**

(२) **''सधै वस्तु असहाय जहँ, तहां निमित्त है कौन?**
**ज्यों जहाज परवाह में, तिरे सहज बिन पौन।''**

**उत्तर ६ ( ब ) :** (१) निमित्त के बिना अकेला उपादान बलहीन है;—ऐसी दलील प्रश्नकार करता है, उसके उत्तर में इस दोहे में कहते हैं कि—

**''उपादान बल जहँ तहां, नहि निमित्त को दाव,**
**एक चक्र सों रथ चले, रवि को यहै स्वभाव॥''**

इसका भावार्थ यह है कि—जहाँ देखो वहाँ सर्वत्र कार्य होने में उपादान का ही बल है, किन्तु निमित्त का किंचित् दाव नहीं है अर्थात् निमित्त कुछ भी नहीं कर सकता, अकेले उपादान के बल से ही सर्वत्र कार्य होता है। जिसप्रकार सूर्य का रथ एक ही चक्र से चलता है, (सूर्य के रथ का एक ही पहिया है—ऐसा लोक में कहा जाता है, इसलिये उसे यहाँ दृष्टान्तरूप से लिया है।) उसीप्रकार जहाँ देखो वहाँ अकेले उपादान के बल से ही कार्य होता है; और उससमय दूसरा निमित्त होता अवश्य है, परन्तु कार्य के होने में उस निमित्त का कोई दाव (सामर्थ्य) नहीं है।

(२) निमित्त का पक्षकार प्रश्न करता है कि—यदि अकेले उपादान से ही कार्य होता हो, तो पानी में चलनेवाला जहाज पवन की सहायता के बिना क्यों थक जाता है?—उसके उत्तर में यह दोहा कहा है कि:—

**''सधै वस्तु असहाय जहँ, तहां निमित्त है कौन?**
**ज्यों जहाज परवाह में, तिरे सहज बिन पौन।''**

इसका भावार्थ यह है कि—जहाँ समस्त वस्तुएँ पर की सहायता रहित ही सिद्ध होती हैं वहाँ निमित्त कौन है?! असहाय वस्तु में स्वयमेव कार्य होता है, उसमें निमित्त बिलकुल कार्यकारी नहीं है। जिसप्रकार पानी के प्रवाह में जहाज बिना पवन के ही सहजरूप से तैरता है, उसी प्रकार द्रव्य के परिणमनरूप प्रवाह में उपादान का कार्य निमित्त की सहायता के बिना स्वयं अपने से ही होता है।

—इसप्रकार उपादान स्वतंत्र है, किन्तु निमित्त के आधीन नहीं है—ऐसा यह दोहे सिद्ध करते हैं। ●●●

## ''लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका''

यह एक अत्यावश्यक, स्वाध्याय तथा प्रचार योग्य तत्त्वज्ञान प्रवेशिका है। मुमुक्षुजन अवश्य स्वाध्याय करें।

२० प्रतियों से अधिक मंगाने पर २५) प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

मिलने का पता—

जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


## ज्ञानी के अंतर से करुणा झरती है....

''हे भाई! पर की चिंता छोड़कर अपना कल्याण कैसे हो सकता है—उसका तू विचार कर... तू अपना सुधार! अपने हित के लिये तू अंतर्मुखस्वभाव में देख... और अपने पूर्ण स्वभाव को लक्ष में ले... भाई! यह देह तो क्षण में छूट जायेगी। बाह्य में भले ही चाहे जैसा हो परन्तु तू अपने आत्मतत्त्व को समझ; उसके समझने से ही तेरा कल्याण होगा और भव का अन्त आयेगा!''—आत्मा पर का तो कुछ कर ही नहीं सकता, तथापि अज्ञानी मात्र अभिमान करके भवसमुद्र में गोते खाता है। ऐसे जीवों पर करुणा करके ज्ञानियों ने अपने हितार्थ ऐसा उपदेश दिया है। अहो! यह बात तो जगत को सर्वप्रथम समझने योग्य है। दूसरा सबकुछ भले ही आये या न आये, परन्तु यह बात समझने योग्य है। इसे समझे बिना कल्याण नहीं हो सकता। जो यह समझेगा, उसके भव का अन्त आ जायेगा। आत्मा का—अपना—हित करने की यह बात है।

[—प्रवचन से]

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक
प्रवचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों की—

## अवश्य स्वाध्याय करें

| | | | |
|---|---|---|---|
| समयसार प्रवचन भाग १ | ६) | भजनमाला | |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ५) | (अजमेर भजन-मण्डली की) | |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ४) | मूल में भूल | |
| समयसार (हिंदी) | | मुक्ति का मार्ग | |
| (मूल संस्कृत टीका सहित) | १०) | अनुभवप्रकाश | |
| प्रवचनसार हिंदी | | अष्टपाहुड़ | ३) |
| (मूल संस्कृत टीका सहित) | ५) | चिद्विलास | १) |
| आत्मावलोकन | १) | दसलक्षणधर्म | ) |
| मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें | १) | जैन बालपोथी | ) |
| द्वादशानुप्रेक्षा | २) | सम्यक्दर्शन | २) |
| अध्यात्मपाठसंग्रह | ५) | स्तोत्रत्रयी | ) |
| समयसार पद्यानुवाद | ) | भेदविज्ञानसार | २) |
| निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ? | ) | पंचमेरु पूजन | ) |
| 'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक मूल्य | ३) | | |
| आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७ वर्ष | प्रत्येक का ३) | | |

(डाकव्यय अतिरिक्त)

मिलने का पता—
**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


मुद्रक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, वल्लभ-विद्यानगर
प्रकाशक : श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये—जमनादास माणेकचंद रवाणी